CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA
ISSN 2231 - 2137

डॉ0 आचार्य रामविलास भार्मा और उनका आलोचना कर्म

डॉ0 वन्दना श्रीवास्तव, *एसोशिएट प्रो0, हिन्दी विभाग,*
श्री ज0ना0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

Received: 06/01/2018	Edited: 18/01/2018	Accepted: 30/01/2018

शोध सार: *आलोचना अपने समय की बौद्धिकता की उपस्थिति है। बौद्धिकता का लक्ष्य मनुष्य की स्वाधीनता है। यही सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता बौद्धिकता की मूल है, जो आलोचना को मुक्ति धर्मी बनाती है। साहित्य के जन्म के साथ ही आलोचना का आरंभ हो जाता है। साहित्य के विकास के साथ विविध समीक्षा प्रणालियों तथा समीक्षा भावों का विकाास हुआ। डॉ0 राम विलास शर्मा ऐसे समीक्षक हैं, जिनकी आलोचना के प्रतिमान एवं स्थापित मूल्य 21वीं सदी की हिन्दी आलोचना के प्रकाश स्तम्भ हैं। 'निराला जी की कविता' से आरंभ होकर शर्मा जी की आलोचना धीरे–धीरे समाज की ओर मुड़ी। 'प्रेमचन्द', भारतेन्दु युग' जैसी आलोचनाओं के प्रकाशन के बाद राम विलास शर्मा कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये और तब उन्हें मार्क्स, लेनिन, स्टालिन आदि की रचनायें पढ़ने का एवं मार्क्सवादी सिद्धान्त को समझने का अवसर मिला और यहाँ से शर्माजी के चिंतन का एक नया दौर आरंभ हुआ जो अपेक्षाकृत आधिक प्रखर व सुसंगत आलोचना दृष्टि से संपन्न था। सन् 1946 में 'निराला',1952 में प्रेमचन्द पर लिखी अपनी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' जैसी आलोचनायें इसका उदाहरण हैं।*

1937 से 1947 की अवधि में लिखे गये निबंधों का संकलन 1948 में 'संस्कृति और साहित्य' 'नाम से प्रकाशित हुआ। 1948 में ही प्रकाशित 'प्रगति और परंपरा ' निबंध संग्रह में राम विलास जी ने राजनीतिक स्थिति और प्रगतिशील साहित्य संबंधी विषयों पर विचार विमर्श किया। 1953 में उनकी 'भारतेन्दु हरिशचंद्र', 1954 में 'भाषा साहित्य और संस्कृति' एवं 'प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें' सन् 1955 में 'लोक जीवन और साहित्य' पुस्तकें प्रकाशित हुईं। सन् 1955 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' सन् 1961 में प्रकाशित 'आस्था और सौंदर्य' ,1967 में प्रकाशित 'निराला की साहित्य –साधना का प्रथम खंड ,1972 में निराला की साहित्य साधना' का दूसरा खंड, सन् 1976 प्रकाशित पुस्तक का तीसरा खंड 'निराला के लिखे हुए' तथा 'निराला को लिखे हुए' पत्रों के संकलन के द्वारा आचार्य जी ने हिन्दी आलोचना साहित्य को समृद्ध किया। सन् 1977 में 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण', 1978 में 'नई कविता और अस्तित्ववाद', 1981 में निबंध संग्रह 'परंपरा का मूल्यांकन', 1981 में ही 'भाषा युगबोध और कविता', 1982 में 'कथा, विवेचना और गद्य शिल्प', 1984 में 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य' और 1986 में ' प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल' प्रकाशित हुई।

डॉ0 राम विलास शर्मा ने साहित्य में जो भी आवश्यक जाना उसे प्रकट कर प्रगतिशीलता का परिचय दिया और आलोचना की राह में एक नयी दिशा को चुना, जहाँ से उन्होने अपने निष्कर्ष , विमर्श एवं उपलब्धियाँ साहित्य को प्रदान कीं । डॉ0 शर्मा ने अपनी आलोचना दुष्टि के मानदण्ड स्वयं निर्मित किए और अपनी आलोचना दृष्टि को नया आयाम दिया। उन्होने हिन्दी सहित्य के आलोचना क्षेत्र में समालोचना की परंपरागत शैली से अलग एक नई पद्धति अपनायी 'व्यावहारिक समीक्षा' की । उनका समस्त आलोचनात्मक कर्म साहित्य की कालगत प्रवृत्तियों को परखने में सक्ष230मह"। शास्त्रीय दुरूहता से मुक्त बोलचाल की पारदर्शी गद्य में जटिल बात को सुलझा कर कहने की कला में डॉ0 शर्मा बेजोड़ है। हिन्दी आलोचना में जो धारदार एवं व्यावहारिक भाषा उन्होने दी है, उससे एक नई प्रगतिशील संभावना का उद्घाटन हुआ है।

बीज शब्द *– आलोचना, साहित्य, प्रगतिशील साहित्य, मार्क्सवादी आलोचक, रीतिकालीन साहित्य, व्यक्तिवाद, व्यावहारिक समीक्षा.*

'आलोचना अपने समय की बौद्धिकता की उपस्थिति है।' नामवर सिंह के इस विचार को मैनेजर पांडे भी स्वीकार करते हैं, किंतु यह बौद्धिकता ''अपनी सेवा में लगी बौद्धिकता नहीं बल्कि अपने समाज के वर्चस्ववादी विमर्श की काल्पनिक सहमति के द्दम की निर्मम आलोचना करने वाली बौद्धिकता है। ऐसी ही बौद्धिकता क अपने समय के समाज के आलोचना करने वाली का प्रतिनिधित्व करती है। वह ऐसी निरंतर सतर्क बौद्धिकता होती है, जो अपने समय की हलचलों को जानती है और धड़कनो को पहचानती है। उसमें अपने समाज, संस्कृति और साहित्य के प्रति गहरी जिज्ञासा और ऐसी प्रश्नात्मकता होती है, जिसकी पहुँच के बाहर न परंपरा की स्मृति होती है, न वर्तमान का बोध न भविष्य की चिंता । उस बौद्धिकता का लक्ष्य मनुष्य की स्वाधीनता है, मनुष्य की अमूर्त अवधारणा की दार्शनिक स्वतंत्रता नहीं।''1

बौद्धिकता का लक्ष्य मनुष्य की स्वाधीनता है। वह समाज में पराधीनता के शिकार मनुष्यों की सामाजिक

–सांस्कृतिक स्वतंत्रता है। यही सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता बौद्धिकता की मूलगामिता है, जो आलोचना को मुक्ति धर्मी बनाती है। तभी आलोचना, टीका, परंपरावादी रूढ़ियों और अकादमिक आलोचना की आत्म मुग्धता से बचकर 'सभ्यता समीक्षा' बनती है। मुक्तिबोध के अनुसार 'सभ्यता समीक्षा' के लिए 'सत् चित् आनंद' के बदले 'सत् चित् वेदना ' का बोध जरूरी है, क्योंकि तभी सत्ताओं द्वारा सताये गये लोगों के प्रति गहरी संवेदनशीलता उत्पन्न होती है और यही संवेदनशीलता मुक्ति–धर्मी आलोचना की ऊर्जा का आधार है। आलोचना को सभ्य समीक्षा या सांस्कृतिक समालोचना के रूप में विकसित करने की जरूरत है, क्योंकि आलोचना का चरित्र सांस्कृतिक होता है।' (ग्राम्शी)

साहित्य के जन्म के साथ ही आलोचना का आरंभ हो जाता है। साहित्य के विकास के साथ विविध समीक्षा प्रणालियों तथा समीक्षा भावों का विकाास हुआ है और साथ ही ऐसे समीक्षक और आलोचक सामने आये हैं जिन्होने हिंदी समीक्षा का राजपथ निर्मित किया है और युवा आलोचकों के लिए पदचिह्न छोड़े हैं। डॉ0 राम विलास शर्मा ऐसे ही समीक्षक हैं, जिनकी आलोचना के प्रतिमान एवं स्थापित मूल्य 21वीं सदी की हिन्दी आलोचना के प्रकाश स्तंभ हैं। कुबेरनाथ राय के अनुसार , ''कस्तूरी की पहचान हरेक को नहीं होती और जिसे होती है वह अकेला ही उसकी ख्याति फैलाने के लिए पर्याप्त होता है।'' राम विलास शर्मा ऐसे ही आलोचक हैं, जिनकी विहंगम दृष्टि माणिक मोती ढूँढ़ लाती है।

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की शुरूआत 1936 से होती है। इससे दो वर्ष पहले ही मार्क्सवादी आलोचक डॉ0 रामविलास शर्मा अपनी आलोचना की शुरूआत 'निराला जी की कविता' नामक आलोचनात्क लेख से कर चुके थे, जो 1934 में 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इस निबंध के आरंभ में ही शर्मा जी इस निबंध को लिखने का कारण बताते है, '' मैने अभ्युदय (जुलाई 23, 1934) में श्री ज्योति प्रसाद मिश्र' निर्मल' का उक्त कवि के ऊपर लिखा हुआ लेख पढ़ा । .... निराला जी की पार्टी पॉलिटिक्स की और व्यक्तिगत नीति की मुझे यहाँ विवेचना नहीं करनी है, पर उनकी कविता पर दुरूहता, नीरसता अर्थहीनता तथा छंदों के ऊटपटाँगपन के आक्षेप नये नहीं है। एक हिंदी प्रेमी और विशेषकर कविता प्रेमी के नाते मुझे यह आक्षेप खटकते हैं।''2 अपने निबंध में डॉ0 शर्मा ने निराला की कविताओं के उदाहरणों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करके इन आक्षेपों का उत्तर दिया। यह निबंध उनके साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में पहला प्रवेश था। अलोचना के क्षेत्र में अपने आने का कारण बताते हुए डॉ0 शर्मा कहते हैं, ''निराला को लेकर हिंदी में कितना संघर्ष हो चुका है, तब मुझे इसका पता न था। सन् 1934 में यह संघर्ष ही मुझे आलोचना के क्षेत्र में घसीट लाया और मेरा पहला आलोचनात्मक निबंध निराला के काव्य के समर्थन में प्रकाशित हुआ । संभव है यह संघर्ष न होता, मेरे प्रिय कवि पर द्वेषपूर्ण आरोपों की वर्षा न की गई होती तो मैं आलोचना के क्षेत्र में आता ही नही ं।''3

साहित्य से आरंभ होकर शर्मा जी की आलोचना धीरे–धीरे समाज की ओर मुड़ी। उनकी आलोचना में सामाजिक चिंताये स्थान लेने लगीं। 1937 में , 'निराला के गद्य में व्यंग्य और परिहास' शीर्षक लेख में रामविलास जी ने व्यंग्य के सैद्धान्तिक विवेचन के साथ ही समाज और साहित्य के लिए व्यंग्य की आवश्यकता प्रतिपादित की । 1937 मे ही 'छायावादी कवियों की कहानियाँ ' शीर्षक लेख में पंतजी की रचनाओं की व्याक्ति और समाज के संबंध को ध्यान में रखकर समीक्षा की । 1939 में उनका मार्क्सवाद की ओर झुकाव स्पष्ट परिलक्षित हुआ जब उन्होने अमृतलाल नागर की पुस्तक 'नवाबी मसनद' की भूमिका लिखी।

राम विलास शर्मा प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य नहीं थे, तब भी 1939–40 में उन्होने अपनी पहली अलोचना पुस्तक 'प्रेमचन्द' लिखी जो 1941 में प्रकाशित हुई और पहली बार प्रगतिशील साहित्य संबंधी बहस में हस्तक्षेप किया । यह वह युग था जब प्रगतिशील साहित्य संबंधी बहस जोरों पर थी और प्रेमचंद की उपेक्षा की जा रही थी। शर्मा जी को प्रेमचन्द के साहित्य में आम लोंगों की समस्याओं और जीवन की झलक दिखाई देती है और युगीन समस्याओं, स्वाधीनता आंदोलन का सत्य रूप उद्घाटित दिखता है। वे प्रेमचंद की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, '' प्रेमचन्द की आवाज सुनकर हमे अपने देश और जनता पर गर्व होता है, उस जातीय संस्कृति पर गर्व होता है, जिसे प्रेमचन्द सँवार रहे थे ..... प्रेमचन्द की आवाज भारत की अजेय जनता की आवाज है इसलिए प्रेमचंद आज भी हमारे साथ है।''4

हिन्दी की प्रगतिशील परंपरा की व्याख्या की अगली कड़ी के रूप में डॉ0 राम विलास शर्मा ने 1942 में 'भारतेन्दु युग' पुस्तक लिखकर उस युग के विभिन्न विधाओं में लिखे साहित्य का विश्लेषण किया और भारतीय समाज और साहित्य की प्रगति में उसके योगदान को सामने रखा। यह पुस्तक 1943 में प्रकाशित हुई।

राम विलास शर्मा कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये और तब उन्हें मार्क्स , लेनिन , स्टालिन आदि की रचनायें पढ़ने का, मार्क्सवादी सिद्धान्त को समझने का अवसर मिला और यहाँ से शर्माजी के चिंतन का एक नया दौर आरंभ हुआ जो अपेक्षाकृत आधिक प्रखर व सुसंगत आलोचना दृष्टि से संपन्न था। वे कहते भी हैं, ''मार्क्सवाद समाज को समझने और उसे बदलने का विज्ञान हैं ..... मार्क्सवाद भारतीय समाज को समझने के लिए एक दृष्टिकोण देता है। .....मार्क्सवाद से प्रभावित होने का अर्थ यह नहीं है कि हम साहित्य को किसी राजनीतिक कार्यक्रम से बाँध देते है, वरन् उससे प्रभावित होने का अर्थ है, समाज और साहित्य की गतिविधियों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना।''5

सन् 1946 में 'निराला' प्रकाशित हुआ, जिसमें निराला के व्यक्तित्व और जीवन के साथ ही उनके काव्य और कथा साहित्य का विशेष रूप से छायावादोत्तर काल की उनकी काव्य और कथासाहित्य का विशेष रूप से छायावादोत्तर काल की उनकी रचनाओं का विवेचन कर नए साहित्य में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिलाया, वही 1952 में प्रेमचंद पर लिखी अपनी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग' मे प्रेमचंद के उपन्यासों की विशद व्याख्या करने के साथ ही उनकी कहानियों का भी विश्लेषण किया और कहानियों की तुलना में उपन्यास को अधिक महत्व दिया। इसका कारण स्पष्ट करते हुए उन्होने अन्यत्र बताया कि, ''बेशक प्रेमचंद ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, पर यदि वर्ग संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करें तो देखेंगें कि फ्रांस ,रूस, इंग्लैण्ड, अमेरिका के बड़े–बड़े कथाकार उपन्यासों में ही वर्ग संघर्ष का भरापूरा चित्रण कर सके हैं। ''6 डॉ0 शर्मा ऐसे साहित्य को ही सार्थक मानते थे जो समाज से जुड़ा हो, जिसमें समाज की समस्याओं का चित्रण हो व उससे संबंधित समाधानों की ओर भी संकेत किये हों। वे जब भी आलोचना करते भाषा साहित्य और समाज तीनो को सामने रखकर देखते थे। आलोचना करने की यही दृष्टि उन्हें अन्य आलोचकों से पृथक करती है।

1937 से 1947 की अवधि में लिखे गये निबंधों का संकलन 1948 में 'संस्कृति और साहित्य' 'नाम से प्रकाशित हुआ। डॉ0 शर्मा के साहित्य चिंतन के विकास को समझने की दृष्टि से यह संग्रह महत्वपूर्ण है। 1948 में ही प्रकाशित 'प्रगति और परंपरा ' निबंध संग्रह में राम विलास जी ने राजनीतिक उथल पुथल ,सांप्रदायिक दंगो और प्रगतिशील साहित्य संबंधी विषयों पर विचार विमर्श किया।

''हिंन्दी साहित्य में जो अनेक समस्याओं पर तरह–तरह के विवाद हुआ करते हैं, उनके समाधान के लिए बहुत सी सामग्री भारतेंदु के साहित्य में मिलेगी। भारतेंदु हिंदी की जातीय पंरपरा के संस्थापक हैं, मुख्यतः उनकी बताई हुई दिशा में चलकर ही हमारा साहित्य उन्नति करेगा।''7 इस विचार को लेकर 1953 में राम विलास जी ने 'भारतेंदु हरिशचंद्र' पुस्तक लिखी। उर्दू, हिंदी के संबंधों, राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास की समस्याओ पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार करते हुए 1954 में 'भाषा साहित्य और संस्कृति' पुस्तक की रचना की । 1954 में ही प्रगतिशील लेखकों के विचारधारात्मक संघर्ष को सामने लाने वाली 'प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें' पुस्तक प्रकाशित हुई। सन् 1955 में उन्होने अपनी साहित्यक मान्यताओं के पीछे छिपे हुए संघर्ष की जानकारी अपने पाठकों को 'लोक जीवन और साहित्य' पुस्तक के माध्यम से दी।

सन् 1955 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' में डॉ0 शर्मा ने शुक्ल जी द्वारा की गयी हिन्दी साहित्य की समीक्षा का विशलेषण करके उसमें विद्यमान रीतिकालीन साहित्य मूल्यों के प्रतिरोध को उजागर किया। शुक्ल जी के साहित्य चिन्तन के प्रमुख आधारों को पहचान कर रामविलास जी ने रामचन्द्र शुक्ल जी को हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील परंपरा का महत्वपूर्ण स्तंभ सिद्ध किया। उन्होने लिखा,''हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद और कवि निराला का। उन्होने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया, जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचन्द और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्याक्तिवाद को। उन्होने बाह्य जगत और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।''8

सन् 1961 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आस्था और सौंदर्य' में राम विलास जी ने अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मानदंडों, व मूल्यों से संबधित विचारों को प्रकट किया। इसके बाद 1967 में प्रकाशित हुआ, 'निराला की साहित्य –साधना का प्रथम खंड जहाँ निराला अपनी तमाम कमजोरियों और विशेषताओं के साथ उपस्थित हैं। 1972 में निराला की साहित्य साधना' का दूसरा खंड निराला की कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचनात्मक लेख तथा देश की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के विषय में उनके विचारों के आधार पर उनके भावबोध, कला तथा विचारधारा का सांगोपांग विवेचन लेकर आया। सन् 1976 प्रकाशित पुस्तक के तीसरे खंड में शर्मा जी ने 'निराला के लिखे हुए' तथा 'निराला को लिखे हुए' पत्रों को संकलित किया है। ये पत्र निराला को समझने की स्रोत सामग्री हैं।

सन् 1977 में 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण', 1978 में 'नई कविता और अस्तित्ववाद', 1981 में निबंध संग्रह 'परंपरा का मूल्यांकन', 1981 में ही 'भाषा युगबोध और कविता', 1982 में 'कथा, विवेचना और गद्य शिल्प', 1984 में 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य' रचनाये प्रकाशित हुई। प्रगितिशील काव्य की मुख्य धारा की पहचान करते हुए उहोंने केदारनाथ अग्रवाल को चुना और 1986 में उनकी पुस्तक' प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल' प्रकाशित हुई।

डॉ0 राम विलास शर्मा ने साहित्य में जो भी आवश्यक जाना उसे प्रकट कर प्रगतिशीलता का परिचय दिया और आलोचना की राह में एक नयी दिशा को चुना, जहाँ से उहोंने अपने निष्कर्ष, विमर्श एवं उपलब्धियाँ साहित्य को प्रदान कीं । वे आलेचना करते समय अपनी बात इस प्रकार सामने रखते थे कि उसके साथ जुड़े विभिन्न तथ्य स्पष्ट हो जायें। वे रचनाओं को ऊपरी या सतही रूप से नहीं बल्कि उनकी गहराइयों तक पहुँचकर ही उससे संबंधित विवेचना विश्लेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। डॉ0 शर्मा ने अपनी आलोचना दुष्टि के मानदंड स्वयं निर्मित किये और अपनी आलोचना दृष्टि को नया आयाम

दिया। उनका समस्त आलोचनात्मक कर्म साहित्य की कालगत प्रवृत्तियों को परखने में सक्षम है। इसीलिए डॉ0 नामवर सिंह उन्हे साहित्य का इतिहास लेखक मानते हुए कहते हैं, ''यह सही है कि डॉ0 शर्मा ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से कोई ग्रंथ नहीं लिखा। जो नाम से ही 'इतिहास' को पहचाने के आदी हैं उन्हें जरूर निराशा होगी, लेकिन उपर्युक्त कृतियाँ समग्रतः साहित्य का इतिहास नहीं है तो क्या है? साहित्य का इतिहास और होता क्या है?''9

स्पष्ट है कि डॉ0 राम विलास शर्मा ने अपने आलोचनात्मक लेखन से हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि की है। 'उनका साहित्य चिंतन जन सामान्य के उन्थान की पैरवी करता है। '10 साहित्य का उद्देश्य उनके लिए समाज से जुड़ा है। वे कहते हैं, ''साहित्य का उद्देश्य थोड़े से गिने चुने संपत्तिशाली लोगों का मनोरंजन करना न होना चाहिए, बल्कि उस जनता के आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष से उसे नाता जोड़ना चाहिए, जो नए समाज का निर्माण करने की क्षमता रखता है और पुरानी व्यवस्था के उत्पीड़न को खत्म करने को लड़ रहा है।''

डॉ0 शर्मा उन साहित्यकारों की ही समीक्षा करते थे जिनकी रचनाओं में भारतीय जनता का हित स्पंदित होता था। यही कारण है कि उन्होने प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर, नागार्जुन, अमृत लाल नागर, केदारनाथ अग्रवाल, रामचन्द्र शुक्ल आदि लेखकों पर आलोचनात्मक कार्य किया। राम विलास जी ने अपनी आलोचना दृष्टि का दायरा केवल साहित्य तक ही सीमित न रखकर भाषा, समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, राजनीति, इत्यादि तक बढ़ाया। उहोंने इतिहास और समकालीन परिदृश्य' शीर्षक से एक पुस्तक माला दो खण्डों में तैयार की –प्रथम –'स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिदृश्य', जिसमें 1857 के स्वाधीनता संग्राम एवं राष्ट्रीय एकता के संघर्ष एवं सामाजिक समस्याओं को दर्शाया गया है, द्वितीय–'भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद', जिसमें ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा को भारत और एशिया के व्यापक संदर्भों से जोड़कर दर्शाया गया है।

स्पष्ट है कि शर्मा जी का अध्ययन विस्तृत और गंभीर है तथा उनकी दृष्टि प्रगतिशील, साहित्यिक एवं शोधपरक। प्रगतिशील चेतना के विरोधी स्वरों को उन्होने गंभीर किंतु आक्रामक उत्तर दिया। यही कारण है कि उन्हें सर्वाधिक विवादास्पद एवं विध्वंसात्मक समीक्षक कहा गया। इसके अतिरिक्ति शास्त्रीय दुरूहता से मुक्त बोलचाल की पारदर्शी गद्य में जटिल बात को सुलझा कर कहने की कला में डॉ0 शर्मा बेजोड़ है। हिन्दी आलोचना में जो धारदार एवं व्यावहारिक भाषा उन्होने दी है, उससे एक नई प्रगतिशील संभावना का उद्घाटन हुआ है। उन्होने हिन्दी सहित्य के आलोचना क्षेत्र में समालोचना की परंपरागत शैली से अलग एक नई पद्धति अपनायी 'व्यावहारिक समीक्षा' की। उनका सिद्धान्त विशलेषण भी व्यावहारिक धरातल पर ही हुआ। यही कारण है कि वह ताजी हवा की सुखद अनुभूति देता है और साथ ही उत्तेजित भी करता है।

संदर्भ सूची

1. आलोचना की सामाजिकता –मैनेजर पांडेय ,पृ.17
2. विराम चिह्न– राम विलास शर्मा , पृ.44
3. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि–राम विलास शर्मा, पृ.13
4. हिन्दी आलोचना शिखरों से साक्षात्कार –रामचंद्र तिवारी , पृ.105
5. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य –राम विलास शर्मा, पृ.221
6. अपनी धरती अपने लोग– राम विलास शर्मा, पृ.110
7. भारतेन्दु हरिशचंद्र–प्रथम संस्करण–भूमिका –राम विलास शर्मा
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना –राम विलास शर्मा, पृ.7
9. वाद विवाद संवाद – नामवर सिंह,–पृ.104
10. हिंदी आलोचना का विकास –डॉ0 मधुरेश, पृ.44